बंगाल , मथुरा, प्रयाग, काशी व नीलांचल में वैष्णव धर्म, कृष्ण–भक्ति , नाम कीर्तन के प्रचार–प्रसार में चैतन्य व उनके सहकारी भक्तों का योगदान–

AKHILESH KUMAR

(Deptt. Hindi) R.P.P.G. Collge
Kamalganj Farrukhabad

सारांश– वैष्णव धर्म के प्रतिस्थापक चैतन्य देव के बचपन का नाम विश्वरूप माता शची देवी व पिता जगन्नाथ मिश्र उन्हें निमाई और गौरांग कहकर पुकारते थे। उनका जन्म सं0 1542 फाल्गुन पूर्णिमा रात्रि में चन्द्रग्रहण के समय नवद्वीप (नदिया–बंगाल) में हुआ था। 9वर्ष की आयु में उनका उपनयन संस्कार हुआ और उन्होंने स्थानीय गंगा दास की पाठशाला में प्रवेश लिया। 11 वर्ष की आयु में स0 1533 में पिता के निधन के बाद अपनी विलक्षण प्रतिभा से 14–15 वर्ष की आयु में व्याकरण की टीका और 15 वर्ष की आयु में उन्होंने न्यायशास्त्र पर महत्वपूर्ण रचनाएं लिखी। नवद्वीप न्यायशास्त्र की शिक्षा के लिए विख्यात था रघुनाथ पंडित महान न्याय शास्त्री की ईर्ष्या के कारण उन्होंने स्वलिखित न्याय रचना को गंगा में बहा दिया। श्री चैतन्य देव ने सं0 1558 में एक पाठशाला खोली उसी वर्ष लक्ष्मी प्रिया नामक कन्या से उनका विवाह किन्तु 1559 में लक्ष्मी प्रिया का देहावसान हो गया। सं0 1562 में उनका पुनर्विवाह विष्णु प्रिया नामक कन्या से हो गया। उसी वर्ष वे पिता के श्राद्ध के लिए गयाधाम गये जहां माधवेन्द्र पुरी के शिष्य ईश्वर पुरी से प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गये। नित्यानन्द तथा अद्वैताचार्य, हरिदास उनकी भक्ति मंडली में शामिल हो गये। लोग नाम–कीर्तन के समय निताई–गौर का जयकारा लगाते थे। श्री चैतन्य देव ने लोकनाथ चक्रवर्ती और एक युवा भूगर्भ गोस्वामी को सं0 1566 में ब्रज के लीला स्थलों की खोज करने के लिए भेजा। जो अपने काम में असफल रहे । बाद में रूप–सनातन ने इस खोज में सफलता अर्जित की। सं0 1566, 24 वर्ष की आयु में उन्होंने केशवभारती से सन्यास की दीक्षा प्राप्त की और परिवार की सम्मति से से नीलांचल चले गये उनके साथ नित्यानन्द गोस्वामी, जगतानंद पंडित, दामोदर पंडित और मुकुन्ददत्त गये। नीलांचल में 3 माह निवास करने के बाद कृष्णदास बृाहमण के साथ वे दक्षिण की ओर गोदावरी नदी तट तक गये जहां रामानन्द विद्वान से आध्यात्मिक चर्चा हुई। श्रीरंग मे वैंकट भट्ट के साथ चातुर्मास के समय उनके 12 वर्षी पुत्र गोपाल को सं0 1568 माघ शुक्ल 11 को अनुगत किया जो बाद में गोपाल भट्ट के नाम से विख्यात हुआ। गोपाल भट्ट ने ही वृन्दावन में राधारमण को प्रतिष्ठित किया। चैतन्य नीलांचल वापस आ गये और सं0 1571 में बंग प्रदेश की यात्रा के दौरान रामकेलि स्थान पर रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी को उपदेश दिया। सं0 1573 में उन्होंने ब्रज यात्रा के दौरान मथुरा विश्राम घाट पर स्नान कर केशवदेव के दर्शन किये। 24 घाट, दीर्घ विष्णु, भूतेश्वर, महाविद्या, गोकर्णादि, गोवर्धन, वृन्दावन में 1 माह वे अक्रूर घाट पर रहे। उन्हें कृष्ण भक्ति से सात्विक प्रेम हो गया। उसी दौरान मानसी गंगा, कामवन, महावन, गोकुल की यात्रा की।

मकर संक्रान्ति स्नान पर्व पर अक्रूर घाट से महावन, शोरों होते हुए प्रयाग त्रिवेणी में किया। प्रयाग के निकट अड़ैल ग्राम में पुष्टि सम्प्रदाय के संस्थापक महाप्रभु बल्लभाचार्य से कृष्ण तत्व पर चर्चा हुई। फिर चैतन्य देव बनारस पहुँचे और काशी के प्रसिद्ध विद्वान प्रकाशानन्द चैतन्य के अनुगत हो गये। यहीं से 8 वर्ष के देशाटन के बाद चैतन्य नीलांचल वापस चले गये।

श्री चैतन्य देव अपने सहकारी भक्तों हरिदास, गदाधर पंडित, राय रामानंद, स्वरूप दामोदर, अच्युतानंद और रघुनाथ के साथ सं0 1574 से अपने देहावसान सं0 1590 तक नीलांचल में स्थायी रूप से रहे। जीवन के 12 वर्षों में वे बाहय ज्ञान से शून्य हो चुके थे। तब उनके अनुचर भक्त जयदेव, विद्यापति और चंडीदास राधाकृष्ण की प्रेम लीलाएं करते थे। अन्त में 48 वर्ष की आयु में दिव्योन्माद की दशा में वे समुद्र में घुस गये। स्वरूप दामोदर, गदाधर पंडित तथा रामानंद उनके विरह में स्वर्ग सिधार गये और रघुनाथ गोस्वामी दुःखी होकर वृन्दावन चले गये।

चैतन्य देव का संस्कृत, उड़िया, असमियां, बंगला साहित्य पर प्रभाव रहा जिसमें कृष्णदास ने शिक्षाष्टकं, प्रेम रसायन स्त्रोतं, राधा रसमंजरी को महाप्रभु ग्रंथावली नाम से प्रकाशित किया गया। श्री कृष्ण चरितामृत, बंगला साहित्य ''चैतन्य भागवत'' बंगला काव्य ''चैतन्य मंगल'' ''चन्द्रोदय नाटक'' आदि ग्रन्थों में चैतन्य का चरित्र चित्रण किया गया । जिसने वैष्णव मत के प्रचार प्रसार में अपना योगदान दिया।

चैतन्य देव के जन्म के समय बंगाल कई भागों में विभाजित था। उत्तरी भाग गौड़, पूर्वी भाग बंग और पश्चिमी भाग राढ़ कहलाता था। यहां बौद्ध, जैन, शैव और शाक्त धर्मों का प्रभाव था। 8 वीं शदी में पाल वंशी राजाओं का शासन था बौद्ध धर्म पाल राजाओं द्वारा पोषित था किन्तु बौद्ध धर्म में संशोधन के तहत हीनयान और महायान शाखाओं का उदय हुआ किन्तु बाद में उनका पतन भी शीघ्र हो गया। फिर कुमारिल भट्ट शंकराचार्य मत के प्रबल प्रचारक थे चंडी देवी, मनसा देवी, बाशुली–विषहरी देवी की पूजा साथ शाक्त सम्प्रदाय सें निकला ''नाथ पंथ'' का प्रभाव लोगों के मानस पर था। किन्तु वैष्णव मत का प्रभाव न के बराबर था। 12 वीं शदी में कर्नाटक से आये सेन वंश का शासन बंगाल पर स्थापित हुआ। तब वैष्णव मत का प्रचार प्रसार हुआ । सेन वंश के अंतिम शासक लक्ष्मण सेन के दरबार में आर्यशप्तशती कार, गोवर्धनाचार्य धोमी, कविराज , शरण कवि , उमापति कवि जैसे विद्वान उसकी राज्य सभा के रत्न थे। किन्तु उसी समय कुतुबुद्दीन ऐबक भीमदेव को हराकर दिल्ली गुजरात तथा सं0 1253 में बिहार तथा सं 1257 में बंगाल पर आक्रमण कर कब्जे में कर लिया। तब हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों का प्रचार प्रसार रूक गया। बाद में बंगाल में वैष्णव धर्म का प्रचार निम्बकाचार्य और माधवाचार्य सम्प्रदायों द्वारा हुआ। जिसके लिए समुचित वातावरण का निर्माण माधवेन्द्र पुरी ने किया। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बंगाल में वैष्णव धर्म और कृष्ण भक्ति का प्रचार – प्रसार का श्रेय चैतन्य महाप्रभु और उनके सहकारी भक्तों का है।

प्रसंग – प्रस्तुत शोध पत्र वैष्णव सम्प्रदाय के अधिष्ठाता श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन उनके विविध कलापों का एक अध्ययन है। लेख में चैतन्य महाप्रभु के जन्म से लेकर उनके जीवन में घटने वाली घटनाओं का अध्ययन है। उनके द्वारा विद्याध्ययन, न्यायशास्त्र की कृति रचना, प्रथम पत्नी लक्ष्मी प्रिया से विवाह एवं उनका देहवसान पुनः विष्णुप्रिया से पुनर्विवाह साथ ही पिता की मृत्यु के बाद माता शची देवी और पत्नी विष्णु प्रिया को छोड़कर सन्यास, नीलांचल निवास, फिर बृन्दावन, मथुरा, गोकुल के धाम और तीर्थों की यात्रा, प्रयाग काशी का भ्रमण, कृष्ण भक्ति , कृष्ण भक्ति –विलाप तथा नीलांचल

पुनः वापस होने पर सहकारी भक्तों का योगदान और दिव्योन्माद की दशा में समुद्र में घुस जाना जैसी घटनाओं का तिथि वार विश्लेषण किया गया । वैष्णव धर्म के प्रचार प्रसार में सहकारी भक्तों के विशेष योगदान भी यथावर्णित है। शोध पत्र में विषय वस्तु की मौलिकता का पूर्ण ध्यान रखा गया है।

संदर्भः– प्रस्तुत लेख वैष्णव सम्प्रदाय के प्रचार प्रसार में सहकारी भक्तों के योगदान का वर्णन है। विश्वंभर, निमाई, गौरांग से चैतन्य महाप्रभु तक अनेक नामों से जाने गये चैतन्य के जीवन की अनेकों घटनाओं, लीलाओं, देशाटन लेख की विषय वस्तु है। वैष्णव धर्म के प्रसार में आने वाली कठिनाइयों, श्रीवास पंडित के घर नाम –कीर्तन का आयोजन , पाल राजाओं के काल में वैष्णव धर्म की स्थिति, जैन, बौद्ध, शैव व शाक्त तथा नाथ पंथ, चंडी देवी, मनसा देवी , बासुली, विषय–विषहरी देवी की पूजा में वैष्णव धर्म के स्थान का यथोचित वर्णन है । साथ ही कुमारिल भट्ट व सेन राजाओं के काल में वैष्ण का उत्कर्ष, पुनः कुतुबुद्दीन एबक के काल में अपकर्ष और फिर बाद में निम्बकाचार्य, माधवाचार्य सम्प्रदाय का वैष्णव धर्म में योगदान वर्णित है। लेख की प्रमाणिकता व महत्ता सन्दर्भ ग्रन्थों से दिये गये प्रमाण से प्रबल है।

वैष्णव धर्म के प्रतिस्थापक श्री चैतन्य देव का प्रारम्भिक जीवन परिचय–

जगन्नाथ मिश्र और माता शची देवी की नौवीं संतान विश्वरूप जन्म सं0 1532 में तथा दसवीं संतान विश्वंभर का जन्म सं0 1542 फाल्गुन पूर्णिमा सायंकाल चन्द्रग्रहण के समय नवद्वीप (नदिया–बंगाल) में हुआ था। माता शची देवी तात्कालिक प्रसिद्ध विद्वान श्री नालांवर चक्रवर्ती की पुत्री थी। नवद्वीप कलकत्ता से 75 मील उत्तर दिशा में गंगा के तट पर बसा था। जगन्नाथ मिश्र उपनाम पुरंदर सिलहट स्थित अपने पैत्रिक निवास को छोड़कर नवद्वीप में आकर बस गये थे। विश्वंभर अर्थात् चैतन्य से पूर्व जगन्नाथ मिश्र और शची देवी की 8 संतानें काल कवलित हो गयीं थी। उनके माता पिता उन्हें निमाई, तथा गौर वर्ण होने के कारण गौरांग कहकर बुलाते थे। सन्यासी होने पर उनका नाम चैतन्य पड़ा। बाद में इसी नाम से विख्यात हुए।[1] माता पिता ने विश्वरूप का विवाह करना चाहा किन्तु व विरक्त होकर घर से चले गये, तब 6 वर्षीय विश्वंभर माता पिता का एकमात्र सहारा बना रहा। चंचल विनय रहित विश्वंभर वृद्ध माता पिता के साथ परिजन – पुरजन के प्रिय थे। 9 वर्ष की आयु में सं0 1551 उनका उपनयन संस्कार हुआ और उन्हें नवद्वीप स्थिति गंगादास की पाठशाला में प्रवेश दिलाया। चैतन्य के समय नवद्वीप विद्या के प्रमुख केन्द्र के साथ न्यायशास्त्र के लिए समस्त बंग प्रदेश में विख्यात था। जब विश्वंभर की आयु 11 वर्ष थी तभी उनके पिता का सं0 1553 में करूणांत हो गया। गौरांग विश्वंभर मेधावी छात्र थे। उन्होंने 14–15 वर्ष की किशोरावस्था में कलाप व्याकरण की टीका लिखी थी।[2] सं0 1557 में 15 वर्ष की आयु में उन्होंने न्यायशास्त्र पर एक पांडित्य पूर्ण रचना की किन्तु तात्कालिक न्यायशास्त्री रघुनाथ पंडित की ईर्ष्या के कारण उन्होंने अपनी रचना गंगा में बहा दी।

किशोरावस्था में श्री चैतन्य देव –

गौरांग की गिनती न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान के रूप में हो चुकी थी। अतः उन्होंने भी नवद्वीप में एक पाठशाला सं0 1558 में स्थापित की। उसी वर्ष उनका विवाह लक्ष्मी प्रिया नामक कन्या के साथ हुआ किन्तु उसका देहावसान सं0 1559 में हो गया फिर तीन वर्ष बाद सं0 1562 में उनका दूसरा विवाह विष्णु प्रिया नाम गुणवती कन्या से हो गया, तब गौरांग की आयु 20 वर्ष थी। बड़े–बड़े दिग्गज विद्वान उनके पांडित्य का लोहा मानते थे। उन्हें भी अपनी विद्या वैभव का गर्व था।[3]

सं0 1562 में वे अपने स्वर्गीय पिता के श्राद्ध और पिंडदान के लिए गयाधाम गये वहां पर श्री चैतन्य देव , गौरांग को माधवेन्द्र पुरी के शिष्य ईश्वरपुरी से मिलने का सुयोग मिला, विद्वान भगवद्भक्त संयासी के आध्यात्मिक ज्ञान और भक्तिमान से प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गये। ईश्वरपुरी के उपदेश और सत्संग से उनके चरित्र में महान परिवर्तन हो गया। [4] वे भगवद्–प्रेमपथ के सच्चे पथिक बन गये साथ ही उनके जीवन का वह अध्याय आरंभ हुआ जिसने बंग प्रदेश ही नहीं वरन् समस्त उत्तरी भारत के धार्मिक जगत को अत्यंत प्रभावित किया। उनके भक्ति भाव और निर्मल चरित्र से आकर्षित होकर नवद्वीप के अनेक व्यक्ति उनके अनुयायी हो गये।[5]

आरंभ में एक वर्ष तक इस भक्ति मंडली का कीर्तन श्रीवास पंडित के निवास स्थान में घर के अंदर किबाड़ बंद करके होता रहा। तामसी वृत्ति के लोगों को छोड़कर नवद्वीप की अधिकांश जनता ने नवीन प्रेम मार्ग को अपना लिया। उन्होंने गली–गली और घर–घर में हरिकीर्तन का आयोजन कर नवद्वीप को गुंजायमान कर दिया उसी समय नित्यानंद, अद्वैताचार्य और हरिदास नामक भक्तजन भी गौरांग की मंडली में सम्मलित हो गये। गौरांग और नित्यानंद की जोड़ी उनके भक्तों को कृष्ण और बलराम की जोड़ी ज्ञात होती थी। [6] वे लोग कीर्तन करते समय 'निताई–गौर' का जय–जयकार करते थे।

नाम–कीर्तन और कृष्ण भक्ति के अतिरिक्त श्री कृष्ण की ब्रजलीला का रसास्वादन भी उस भक्त मंडली का आवश्यक नित्य कर्म था। भागवतादि पुराणों में श्रीकृष्ण के जिन लीला स्थलों का उल्लेख था उसमें वृंदावन के पावन स्थलों का अधिक महत्व था किन्तु वृंदावन के पावन प्रदेश अत्यधिक सघन वनाच्छादित होने के साथ अत्यधिक लीलास्थल अज्ञात थे।

वृन्दावन के पावन स्थलों की खोज तथा पुनरूद्धार हेतु कार्य –

चैतन्य ने लोकनाथ चक्रवर्ती और एक युवा गोस्वामी भूगर्भ को सं0 1566 में वहां के लीला स्थलों की खोज व पुनरूद्धार हेतु भेजा। किन्तु जंगलों में तमाम भटकने के बाद उन्हें अपने कार्य में सफलता नहीं मिली । उसी समय गौरांग सन्यासी होकर नवद्वीप से चले गये। बाद में चैतन्य द्वारा भेजे हुए रूप– सनातन आदि गोस्वामियों ने वृंदावन की गौरव वृद्धि में सफलता प्राप्त की।[7]

गौरांग को ईश्वरपुरी से दीक्षा लिए चार वर्ष हो चुके थे। वे अपनी वृद्ध माता तथा पत्नी के प्रति कर्तव्यरत नहीं रहे किन्तु दोनों अबलाओं को संतोष था कि उनका गौरांग उनके पास है विचित्र मनोदशा में गौरांग देशव्यापी भ्रमण द्वारा कृष्ण भक्ति का प्रचार करने के लिए आतुर थे। उन्होंने सं0 1566 के माघ शुक्ल पक्ष में केशव भारती से संन्यास की दीक्षा प्राप्त की।[8] तभी उनका नाम संन्यास आश्रम का नाम चैतन्य रखा गया। उन्होने अपने जीवन के लगभग 24 वर्ष पूर्ण कर लिये थे।

श्री चैतन्य देव की सन्यास दीक्षा तथा देशाटन–

चैतन्यदेव की माता और पत्नी को उनके कषाय वस्त्र व मुंड़े सिर को देखकर पीड़ा हुई मॉ ने व्यथित होकर पूछा – ''निमाई, तू भी विश्वरूप की तरह मुझे छोड़ जावेगा।'' चैतन्य ने मॉ को शाष्टॉग प्रणाम कर रहा– '' मॉ तेरी आज्ञा पालन मेरा कर्तव्य है किन्तु सन्यासी का धर्म है कि वह अपने जन्म स्थान में परिजनों के साथ न रहें। इसके अतिरिक्त मॉ तू मुझे जहॉ आज्ञा देगी मैं वहां निवास करूंगा। आखिर में परिवार की सर्वसम्मति से चैतन्य नीलांचल (जगन्नाथपुरी) में निवास करने लगे। चैतन्य के साथ नित्यानन्द गोस्वामी, जगतानंद पंडित, दामोदर पंडित और मुकुंददत्त नामक चार भक्तजन नीलांचल गये तब अद्वैताचार्य रोते हुए घर रह गये। उन्होंने श्रीमती माता शची और दूसरे लोगों को धैर्य और सांत्वना प्रदान की।

नीलांचल में निवास करते समय श्री चैतन्य दवे ने सार्वभौम भट्टाचार्य नामक एक प्रकांड पंडित को अपने शास्त्रीय ज्ञान से प्रभावित किया। उन्होंने नित्यानन्द गोस्वामी को नीलांचल से घर वापस भेज दिया ताकि वे ग्रहस्थ जीवन स्वीकार कर बंग प्रदेश में कृष्ण भक्ति और नाम कीर्तन का प्रचार करें।[9] नीलांचल में तीन माह निवास करने के उपरान्त चैतन्य ने देशाटन करने का विचार किया । वे कृष्णदास ब्राहमण को साथ लेकर दक्षिण की ओर चल दिये। उन्होंने दूसरे साथियों को नीलांचल में रहने का आदेश दिया। दक्षिण की ओर यात्रा करते हुए चैतन्य देव जी गोदावरी नदी के तट तक पहुॅचे। वहां रामानन्द नामक एक विद्वान भक्त जन उनसे आकर मिले। उनके साथ चैतन्य की आध्यात्मिक चर्चा हुई। इसके बाद चैतन्य श्रीरंग क्षेत्र पहुॅचे जहॉ वैंकट भट्ट के साथ चातुर्मास किया। उक्त भट्टजी का पुत्र गोपाल उस समय 12 वर्ष का बालक था, उसे चैतन्य ने सं0 1568 की कार्तिक शुदी 11 को अपना अनुगत किया। बाद में वही सुप्रसिद्ध गोपाल भट्ट हुए जिन्होंने वृन्दावन में ठाकुर राधारमण जी प्रतिष्ठित किया था।[10]

दक्षिण की ओर यात्रा उपरान्त चैतन्य देव नीलांचल वापस आगये उस यात्रा में उन्होंने कृष्णोपासना, कृष्णभक्ति और कृष्ण कीर्तन का व्यापक प्रचार किया अनेक भ्रान्त व्यक्तियों को सन्मार्ग दिखलाया उसी यात्रा में उन्होंने बृहम संहिता और विल्वमंगल लीला शुक कृत '' कृष्ण– कर्णामृत'' नामक ग्रन्थ प्राप्त किये। सं0 1571 में श्री चैतन्य देव जी ने बंग प्रदेश यात्रा की उन्होंने रामकेलि नाम स्थान पर चैतन्य देव ने रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी दोनों भाइयों को उपदेश दिया।[11]

श्री चैतन्य देव की ब्रज यात्रा –

सं0 1573 में उन्होंने अपनी चिर इच्छित ब्रज यात्रा आरम्भ की। वे काशी प्रयाग होते हुए मथुरा गये वहॉ विश्राम घाट पर यमुना में स्नान करने के बाद केशवदेव के दर्शन किये। इसके पश्चात उन्होंने यमुना के 24 घाट, दीर्घ विष्णु, भूतेश्वर, महाविद्या, गोकर्णादि के भी दर्शन किए। मथुरा से वे गोबर्धन, राधाकुण्ड, वृन्दावन आदि स्थानों में गये। वे ब्रज में प्रायः एक माह तक रहे।[12] उनका निवास स्थान मथुरा वृंदावन के मध्यवर्ती अक्रूर घाट पर था। वहॉ से श्री चैतन्य देव जी ने ब्रज के विविध स्थानों की यात्रा की।

गोवर्धन में श्री चैतन्य ने मानसी गंगा में स्नान कर हरिदेव जी के आगे कीर्तन और नृत्य किया फिर वे गिरराज की परिक्रमा करते हुए, गांठौली ग्राम में श्रीनाथ जी के दर्शनार्थ गये। उस समय यवनों के आक्रमण की आशंका से भक्त जन श्री नाथ जी को गोपालपुर के मंदिर से हटाकर गांठौल के वन में ले गये थे। राधाकुण्ड का वास्तविक तीर्थ उस समय लुप्त था। चैतन्य ने लोगों से पूछकर वहां के धान के खेतों में जल से स्नान किया। उसके बाद वे कामवन, महावन, गोकुल आदि की यात्रा करते हुए मथुरा वापस आ गये । वे भिक्षा के लिए जाया करते थे वहॉ के लीला स्थल प्रायः अज्ञात थे । उनका सात्विक आवेश वृन्दावन यात्रा में इतना बढ़ गया कि वे बार–बार प्रलाप करते हुए मूर्छित हो जाते थे।[13]

ब्रज दर्शन से पुनः नीलांचल वापसी –

मकर संक्रांति का पुण्य पर्व निकट जानकर श्री चैतन्य देव जी प्रयाग –स्नान के लिए तैयार हुए। वे अक्रूर घाट से महावन होते हुए शूकर क्षेत्र (शोरों) गये और संक्राति स्नान पर प्रयाग पहुॅचकर उन्होंने त्रिवेणी में स्नान किया। प्रयाग में उन्हें रूप गोस्वामी मिले। चैतन्य ने उनको नाना प्रकार का उपदेश देकर वृन्दावन जाने का आदेश दिया।[14] प्रयाग के निकट अड़ैल ग्राम में उन दिनों पुष्टि सम्प्रदाय के संस्थापक महाप्रभु बल्लभाचार्य का निवास स्थान था। चैतन्य और बल्लभ दोनों आचार्यों ने कृष्ण तत्व पर वार्ता करते हुए दिव्य सुख अनुभव किया। प्रयाग से चैतन्य देव बनारस गये। वहां पर सनातन गोस्वामी भी राजकीय बंधन से मुक्त होकर चैतन्य की सेवा में गये थे। चैतन्य ने उनको भी वृंदावन जाने का आदेश दिया। काशी के विख्यात विद्वान स्वामी प्रकाशानन्द चैतन्य देव से मिलकर प्रभावित होकर अनुगत हो गये। काशी में कुछ दिन बिताने के बाद चैतन्य देव नीलांचल वापस चले गये। सन्यास लेने के अनंतर चैतन्य देव ने प्रायः 8 वर्ष तक देश भ्रमण किया।

श्री चैतन्य देव का अन्तिम विश्राम नीलांचल –

चैतन्य देव जी सं0 1574 से नीलांचल (जगन्नाथपुरी) में स्थायी रूप से रहने लगे। सं0 1574 से अपने देहावसान काल सं0 1590 तक के 16 वर्षों में नीलांचल छोड़कर कहीं नहीं गये। उनके साथ नीलांचल में स्थायी रूप से रहने वाले भक्तों में हरिदास, गदाधर पंडित, राय रामानंद, स्वरूप दामोदर, अच्युतानंद और रघुनाथदास मुख्य थे। हरिदास और गदाधर पंडित नवद्वीप में चैतन्य के साथ थे। हरिदास यवन होते हुए भी चैतन्य के हरिनाम कीर्तन में प्रधान प्रचारक थे।[15] गदाधर पंडित चैतन्य को भागवत सुनाया करते थे। राय रामानंद कृष्ण तत्व के महान ज्ञाता और भक्त थे। स्वरूप दामोदर चैतन्य के पार्षद थे। अच्युतानंद चैतन्य के सहकारी अद्वैताचार्य के पुत्र थे। रघुनाथ दास भी युवावस्था में घर का प्रचुर वैभव छोड़कर विरक्त भाव से चैतन्य के शरणागत हुए। चैतन्य ने उनको स्वरूप दामोदर के संरक्षण में रखा।

नीलांचल में प्रतिवर्ष रथ यात्रा के अवसर पर और भी अनेक भक्त एकत्रित हो जाया करते थे अपने जीवन के अंतिम 12 वर्षो में चैतन्य संज्ञाहीन और बाहय ज्ञान से शून्य होकर श्री कृष्ण के विरह में विहवल रहा करते थे। उनके अनुचर भक्त जन जयदेव विद्यापति और चंडीदास कृत राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं का गायन कर उनको सांत्वना देते रहते थे। एक दिन दिव्योन्माद की दशा में दौड़कर वे समुद्र में घुस गये। इस प्रकार सं0 1590 में अपनी 48 वर्ष की आयु में उनका देहावसान हो गया।[16] उनके निधन से नीलांचल ही नहीं जहां भी उनके भक्त थे सभी अपने आपको असहाय और अनाथ मानने लगे। बंग निवासियों ने नित्यानन्द को किसी प्रकार संभाला, वहीं स्वरूप दामोदर एवं उनके अन्तरंग पार्षद गदाधर पंडित तथा राय रामानन्द ने एक वर्ष के अन्दर चैतन्य के विरह में शरीर त्याग दिया। रघुनाथ गोस्वामी दुःखी होकर वृंदावन चले गये।

चैतन्य के आकर्षक व्यक्तित्व और अलौकिक चरित्र का लोगों पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे उनके प्रति अपार श्रद्धा रखने लगे। उनके अनुगामी भक्त जन उनको साक्षात परबृहम का अवतार मानने लगे। चैतन्य सम्प्रदाय के मुख्य ग्रन्थ ''चैतन्य चरितामृत'' में उनके सम्बन्ध में जो लिखा है उसका सुबल श्यामकृत बृजभाषा में अनुवाद हुआ है। उत्तरी भारत के मध्ययुगीन साहित्य पर चैतन्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत, उड़िया, बंगला साहित्य, असमियां व ब्रजभाषा साहित्य पर उनका प्रभाव रहा। किन्तु उनके प्रमुख सहकारी भक्तों की कोई रचना उपलब्ध नहीं है। वर्तमान में चार छोटे स्रोतों को बाबा कृष्णदास ने श्री महाप्रभु ग्रंथावली नामक लघु पुस्तिका में प्रकाशित किया जिन्हें शिक्षाष्टकं, प्रेम रसायन स्त्रोतं, युगल परिहार स्त्रोतं, और राधा रसमंजरी आदि नाम से प्रकाशित किया गया।

चैतन्य सम्प्रदाय के भक्तों ने प्रचुर मात्रा में साहित्यिक रचना कर भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया जिसमें संस्कृत महाकाव्य के रूप में मुरारीगुप्त कृत ' श्री कृष्ण चैतन्य चरितामृत'', बंगला साहित्य वृंदावन दास कृत ''चैतन्य भागवत'' बंगला काव्यग्रंथ लोचनदास कृत '' चैतन्य मंगल'' ललित साहित्य कर्ण कपूर कृत ''चैतन्य चरितामृत'' और ''चन्द्रोदय नाटक'' , कृष्ण कविराज कृत '' चैतन्य चरितामृत'' सबसे प्रमाणिक ग्रन्थ माने जाते है।

<u>पूर्वी भारत में वैष्णव भक्ति तत्व का प्रचार –प्रसार –</u>

पूर्वी भारत अर्थात् बंगाल कई भागों में विभाजित था जिसका उत्तरी भाग गौड़, पूर्वी भाग बंग और पश्चिमी भाग राढ़ कहलाता था। बंग के अतिरिक्त शेष भाग को गौड़ भी कहते थे। बंगाल और उसके निकटवर्ती बिहार, उड़ीसा तथा असम के प्रदेशों में वैष्णव भक्ति तत्व का प्रचार होने से पहले बौद्ध, जैन, शैव और शाक्त धर्मों का प्रभाव था। बौद्ध धर्म का आरम्भिक रूप सदाचार और नीतिप्रधान होते हुए भी कठोर व्यक्तिवादी था। इसलिए वह हीनयान कहलाता तथा बौद्ध धर्म का समिष्टवादी, समन्वयात्मक स्वरूप महायान कहा जाने लगा। महायान शाखा की विकृति के फलस्वरूप मंत्रयान, बज्रयान, सहजयान आदि पंथों का उदय हुआ। फिर शनैः शनैः बौद्ध धर्म का पतन होने लगा।[17] और जन की आस्था जैन और शैव और शाक्त धर्मों के प्रति आस्था बड़ गई। किन्तु कालांतर में शैव और शाक्त धर्म वाम मार्गी तांत्रिक भृष्टाचार के शिकार हो गये। जैन धर्म किसी तरह कठोर अनुशासन के कारण बच पाया। बज्रयान शैव और शाक्त धर्मों का पतन चरम पर था तब उसकी प्रबल प्रतिक्रिया स्वरूप सहजयान का उदय हुआ। सहजयान के चौरासी सिद्धों में सरहपा विशेष प्रसिद्ध हुए जिन्होंने काम–वासना मूलक साधना तथा उससे उत्पन्न भृष्टाचार की कटु आलोचना की। शैव और शाक्त धर्मों में से जो शुद्धिवादी पंथ प्रचलित हुए उनमें ''नाथ पंथ'' विशेष उल्लेखनीय है। इस पंथ के प्रभावशाली गुरू गोरखनाथ ने शैव और शाक्त धर्मों की विलासिता कामुकता को दूर करने का प्रबल प्रयत्न किया।

8 वीं शदी में बंगाल पालवंशी राजाओं के अधीन था जो बौद्ध धर्मावलंबी थे । कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य के प्रबल प्रचार से बौद्ध धर्म भारत के अन्य भागों से निष्काषित हुआ। पाल शासकों के बाद सेन शासकों के शासन में बौद्ध धर्म लुप्त हो गया। बौद्ध धर्म के अनंतर बंगाल में शैव धर्म निर्मित शाक्त धर्म का प्रचार हुआ। शैव धर्म की उपास्य देवी शिव पत्नी शक्ति रूपा दुर्गा है तों वही शाक्तों की आराध्य देवी थी। चैतन्य के जन्म के समय तक बंगाल शाक्त धर्म में आस्था रखता था जिसमें मद्य–मांस का उपयोग कर देवियों की उपासना करते थे। चंडी, मनसा, और बाशुली–विषहरी नामक लोक देवियों की पूजा प्रचलित थीं। वैष्णव धर्म और कृष्ण भक्ति का प्रचार नाम मात्र का था।

विक्रमी सदी 12 में बंगाल में सेन वंशीय राजाओं का शासन आने पर वैष्णव धर्म का थोड़ा बहुत प्रचार होने लगा। सेन वंश मूलतः कर्नाटक के थे जो बंगाल के अधिपति हुए । इस वंश का अंतिम राजा लक्ष्मण सेन था, जिसके दरबार में अनेकों विद्वान कवियों को आश्रय प्राप्त था। जिसमें आर्यसप्तशती कार, गोवर्धनाचार्य, धोभी, कविराज, शरण कवि और उमापति धर जैसे सरस्वती साधकों के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध रससिद्ध कवि जयदेव भी लक्ष्मणसेन की राज्य सभा के रत्न थे।[18]

उसी काल में भारतवर्ष नवनिर्मित यवन शक्ति से आक्रांत हो रहा था। यवन लोग पंजाब मार्ग से आकर दिल्ली को हस्तगत कर चुके थे। कुतुबुद्दीन एबक दिल्ली का शासक था। उसने भीमदेव को पराजित कर दिल्ली से गुजरात तक बहुत बड़ा प्रदेश अपने अधीन कर लिया। कुतुबुद्दीन ऐबक के सेनापति हख्तियारूद्दीन ने सं0 1253 में बिहार पर और 1257 में बंगाल पर आक्रमण कर लिया। उसके फलस्वरूप लक्ष्मणसेन पराजित हुआ और प्रदेश से हिन्दु राजाओं का परम्परागत राजवंश सदा के लिए सदा समाप्त हो गया। जयदेव द्वारा रचित गीत गोविन्द की रचना भी इसी काल में हुई। वैष्णव धर्म और राधा–कृष्ण के प्रेमीगण विद्यमान थे हालांकि उनकी संख्या न के बराबर है। बंगाल में वैष्णव धर्म और कृष्ण भक्ति के प्रचार का आरम्भ निम्बकाचार्य और माधवाचार्य के सम्प्रदायों द्वारा हुआ।[19] बंगाल में राधाकृष्ण की सरस लीलाओं के सर्वप्रथम गायक महाकवि जयदेव थे। मालाधर वसु, चंडीदास और यशोराज खां ने प्राचीन बंगला भाषा में विद्यापति ने मैथिली में चैतन्य महाप्रभु से पहले ही कृष्ण लीला विषयक सरस काव्य की रचना की थी किन्तु वे लोग वैष्णव भक्त नहीं थे।

बंगाल में वैष्णव धर्म और कृष्ण भक्ति के प्रचार प्रसार का श्रेय चैतन्य महाप्रभु और उनके सहकारी भक्तों का है। किन्तु समुचित वातावरण बनाने का कार्य माधवेन्द्र पुरी ने किया जो लक्ष्मीपति के शिष्य थे। एसा कहा जाता है कि वे तेलंग प्रदेश के दाक्षिणात्य ब्राहमण थे । ये माधव सम्प्रदाय के अन्तर्गत राधा भाव के प्रवर्तक माने जाते हैं। माधवेन्द्र पुरी के अनेक शिष्य जिसमें सर्वश्री ईश्वर पुरी , अद्वैताचार्य और नित्यानंद प्रमुख थे। इन सबका सम्बन्ध चैतन्य मत से रहा।

माधवेन्द्र पुरी और ईश्वर पुरी के कारण नवद्वीप , शांतिपुर आदि स्थानों में बंगाली कृष्ण भक्तों की छोटी–छोटी मंडलियां बन गईं। तात्कालिक कृष्ण भक्तों के नाम चैतन्य भागवत में अद्वैताचार्य, गंगादास पंडित, मुरारि गुप्त, श्री वास, चन्द्रशेखर, गौरीनाथाचार्य, मुकुंददत्त जो चैतन्य देव से पहले कृष्ण भक्ति में अनुरक्त थे। चैतन्य के पूर्ववर्ती भक्तों में अद्वैताचार्य प्रमुख थे । अद्वैताचार्य का स्थायी निवास शांतिपुर में था। किन्तु वे प्रायः नवद्वीप में रहते थे। उन्होंने चैतन्य की माता को वैष्णवी दीक्षा दी थी।[20]

नवद्वीप के कृष्ण भक्तों के कथा कीर्तन को वहॉ के बहुसंख्यक शाक्तों ने पसंद नहीं किया। साथ नाम–कीर्तन को पागलों का प्रलाप कहकर हॅसी उड़ाते थे। कुछ पाखण्डियों ने नाम कीर्तन को पग–पग पर विघ्न बाधाएं पहुचायी। इसी कारण कृष्ण भक्त जन श्री वास पंडित के निवास स्थान में किबाड़ बंद कीर्तन किया करते थे। यवन शासक और बहुसंख्यक शाक्तों की असहिष्णुता से उत्पीड़ित बंगाल के मुट्ठी भर कृष्णोपासक भक्त–जन अद्वैताचार्य की इस आशा पर जीवित थे कि भगवान श्रीकृष्ण स्वयं अवतीर्ण होकर शीघ्र ही उनका दुःख दूर करेंगे।

जयदेव चण्डीदास और विद्यापति के गीतों ने बंगाल में राधा–कृष्ण की प्रेमोपासना विषयक जो दिव्यानुभूति जागृत की थी, उसे माधवेन्द्र पूरी एवं ईश्वरपुरी की शिक्षाओं से और स्फूर्ति तथा उत्तेजना प्राप्त हुई थी। वहॉ के भक्तजन प्रेम के देवता का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए व्याकुल थे। ऐसी स्थिति में श्री चैतन्यदेव ने अपने अलौकिक आचरण और दिव्य उपदेशों द्वारा बंगाल में प्रेम भक्त की जो निर्मल धरा प्रवाहित की थी, उसमें अवगाहन कर कृष्ण भक्तों के साथ ही साथ विधर्मी पाखंडी जन भी कृतार्थ हो गये।

निष्कर्ष :– चैतन्य महाप्रभु के जन्म के समय बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त धर्म प्रचलित थे । इन धर्मों के बाद अनेक शुद्धीकरण धर्म जिसमें नाथ सम्प्रदाय प्रमुख था जिसके गुरू गोरख नाथ थे किन्तु 8 सदी में पाल वंश का शासन था और पालवंश द्वारा बौद्ध धर्म संरक्षित था किन्तु बौद्ध धर्म में अनेकों कमियों आने के बाद हीनयान और महायान शाखाओं का पतन होने लगा । 12वीं शदी में कर्नाटक से आये सेन वंश का शासन जब बंगाल पर हुआ तो उनके शासन काल में बुद्ध धर्म प्रायः लुप्त हो गया किन्तु शाक्त धर्म अपनी तमाम कमियों खामियों के बाद बना रहा शाक्त धर्मी वैष्णव धर्म के अनुयायी भक्तों द्वारा किये जाने वाले नाम कीर्तन को पागलों का प्रलाप की संज्ञा देते थे । तमाम विघ्न बाधाएं खड़ी करते थे नतीजा यह होता कि वैष्णव मतानुयायी दुःखी होकर यह सोचकर रह जाते कि कृष्ण भगवान खुद आयेंगे और हमारा दुःख हरेंगें। वैष्णव अपना कीर्तन खुले स्थानों की बजाय बंद स्थान श्रीवास पंडित के घर में किबाड़ बंद कर करते थे। किन्तु चैतन्य महाप्रभु, नित्यानंद, गदाधर पंडित, रायरामानंद , अच्युता नंद और रघुनाथ के सहयोग से वैष्णव मत निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर रहा वाद में निम्बकाचार्य और माधवा चार्य सम्प्रदायों ने वैष्णव मत का प्रचार–प्रसार करने में सफलता प्राप्त की जिसके समुचित वातावरण तैयार करने का कार्य माधवेन्द्र पुरी ने किया।

संदर्भ :–

1. डा0 अटल बिहारी– चैतन्यमत, पृ0– 14 ।
2. श्री श्यामदास– महाप्रभु श्री गौरांग, पृ0– 9 ।
3. डा0 उषा गोयल – चैतन्य सम्प्रदाय, संस्कृति और साहित्य, पृ0 18 ।
4. डा0 अवधविहारी लाल कपूर– ब्रज के भक्त, पृ0 – 216 ।
5. डा0 नरेश बंसल– चैतन्य सम्प्रदाय संस्कृति और साहित्य, पृ0–17 ।
6. एस0सी0 चक्रवर्ती – फिलासफी ऑफ बंगाल वैष्णविज्म, पृ0 – 94 ।
7. डा0 नित्यांनंद – हमारे छः गोस्वामी(श्री गौड़िय षट्गोस्वामी वृंद) पृ0 –1–15 ।
8. श्री श्यामदास – महाप्रभू श्री गोरांग, पृ0– 12।
9. श्री कृष्णदास कविराज– चैतन्य चरितामृत, पृ0– 121 ।
10. डा0 नित्यानन्द –हमारे छः गोस्वामी श्री गौड़िय षट्गोस्वामीवृन्द, पृ0– 40–42 ।
11. डा0 नि'त्यानन्द – षट्गोस्वामी एवं बृज मण्डल के सिद्धान्त, पृ0– 130 ।
12. प्रभूदयाल मीतल– ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, भाग–1, पृ0 280 ।
13. पूर्ण सिंह बैस ठाकुर – श्री गौडेश्वर सम्प्रदाय का इतिहास, भाग–1, पृ0–280।
14. कृष्णदास कविराज– चैतन्य चरितामृत, पृ0–129 ।
15. डा0 अवध विहारी लाल कपूर– ब्रज के भक्त, पृ–250 ।
16. प्रभुदयाल मीतल– ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, भाग–1, पृ0–283 ।
17. डा0 वंदाना शर्मा (सम्पा0) – बौद्ध कला एक सामाजिक मूल्यांकन, में डा0 संजय कुमार शर्मा 'संजय' एवं डा0 वन्दना शर्मा का शोध लेख ''प्रेम की नगरी मथुरा, जहॉ से बौद्ध धर्म विश्व में फैला'' कानपुर – 2011, पृ0. 282–298 ।
18. दिनेशचंद्र सेन– हिस्ट्री ऑफ बंगाली लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर, पृ0– 243 ।
19. नारायण दत्त शर्मा– निम्बार्क सम्प्रदाय और उनके कृष्ण भक्त कवि, पृ0–68 ।
20. डा0 उषा गोयल– चैतन्य सम्प्रदाय संस्कृति और साहित्य, पृ0– 45

अखिलेश कुमार , 25/111, इन्द्रा नगर छिबरामऊ कन्नौज ।